International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 05-11-2019; Accepted: 09-12-2019
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 1; January 2020; Page No. 10-12

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण की महत्ता और केदारनाथ सिंह का काव्य

कुलदीप
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में प्रारम्भ से ही पर्यावरण का अधिकाधिक महत्त्व रहा है। भारतीय संस्कृति को पर्यावरणीय संस्कृति का पर्याय कहा जा सकता है, वेदों में वर्णित 'ऋत' को प्राकृतिक पर्यावरण के नाम से जाना जाता है। वन, वृक्ष और पर्वतों से युक्त मानव सभ्यता का काल सर्वविदित है। वन और जन एक-दूसरे के पूरक हैं। भारतीय संस्कृति के उत्तर वैदिक काल में अरण्यकों-ब्राह्मणों एवं उपनिषदों की रचना हुई, ये तीनों ही वन प्रांतर में लिखे गए। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं सन्यास ये तीनों वनों से जुड़े हुए आश्रम हैं। आदि समय में ऋषियों के आश्रम भी वनों में समाज से दूर बनाये जाते थे, जो कि उस समय की शिक्षा के भी केंद्र हुआ करते थे।

मनुष्य इस संसार की अप्रितम कृति है, जिसके अन्दर बुद्धि और विवेक की शक्ति है। अन्य जीवों में उन्नत होने का दायित्व मनुष्य को समझना चाहिए, उसे ऐसे फैसले लेने चाहिए, जिससे पृथ्वी के अन्य जीवों पर नकारात्मक प्रभाव न पड़े। यहाँ हमें 'गाँधी जी के मंतर' की याद आती है, जिसके अनुरूप मनुष्य को अपना व्यवहार करना चाहिए। तब बुद्धि और विवेक में समृद्ध होने के कारण पर्यावरण संतुलन का दायित्व भी मनुष्य के ऊपर आता है, जिसे हमारे पूर्वजों ने सफलता पूर्वक निभाया भी।

भारतीय संस्कृति में मनुष्य प्रकृति का नियंता नहीं, बल्कि उसकी संतान है। पर्यावरण के प्रति ऋषि-मुनियों की भावुकता व अनुराग इसका प्रमाण देती है। ऋग्वेद के 'पृथ्वी सूक्त' में मनुष्य और पृथ्वी के स्नेह बंधन के अनेक प्रमाण मिलते हैं, जहाँ पृथ्वी को माता के रूप में पूजने की बात कही गयी है- "माता भूमि: पुत्रोअहम् पृथिव्याः"। तमाम जीव-जंतुओं का जन्म और पालन पोषण, आँचल के रूप में विद्यमान आकाश के कारण मनुष्य ने पृथ्वी को स्त्री रूप में देखा है। 'शस्य श्यामला' की अवधारणा, उसकी उर्वरक क्षमता और पालन पोषण की शक्ति के प्रति श्रद्धा और अनुराग के कारण 'मात्रभूमि' जैसी अवधारणा का जन्म हुआ। यजुर्ववेद में पर्यावरण संरक्षण पर बल देते हुए लिखा गया- "पृथिवी मातर्मा हिन्सी मा अहं त्वाम्" अर्थात मैं पृथ्वी संपदा को हानि न पहुँचाऊ एवं "पृथ्वी: पू: च उर्वी भव:" अर्थात समग्र पृथ्वी, सम्पूर्ण परिवेश शुद्ध हो। 'बिन पानी सब सून' को चरितार्थ होते हुए हम वेदों में देख सकते हैं, जल की महत्ता को स्वीकार करते हुए अमृत की संज्ञा से नवाज़ा गया है-"अमृत वा आपः"।

वेदों की असंख्य ऋचाओं में प्रकृति के विभिन्न अंगों के प्रति अनुराग व श्रद्धा व्यक्त की गयी है। भारतीय संस्कृति में सूर्य, चाँद, तारे, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि को देवतुल्य मानकर उनकी उपासना का विधान है। मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर, उनके प्रति कृतज्ञता अर्पित करता है।

प्राचीन काल में प्रकृति और मानव के बीच भावनात्मक संबंध था। मानव अत्यंत कृतज्ञ भाव से प्रकृति के उपहारों को ग्रहण करता था। प्रकृति के किसी भी अवयव को क्षति पहुँचाना पाप समझता था। बढ़ती जनसंख्या एवं भौतिक विकास के फलस्वरूप प्रकृति का अनियंत्रित दोहन प्रारम्भ हुआ। भूमि से हमने अपार खनिज सम्पदा, डीजल, पेट्रोल आदि निकाल कर धरती की कोख को उजाड़ दिया। वृक्षों को काट-काट कर मानव समाज ने धरती को नग्न कर दिया। वन्य जीवों के प्राकृतावास वनों के कटने से वन्य-जीव बेघर होते गए। औद्योगीकरण के कारण लगातार जहर उगलती चिमनियों ने वायुमण्डल को विषाक्त एवं निष्प्राण बना दिया। हमारी पावन नदियाँ अब गंदे नाले का रूप ले चुकी हैं। नदियों का जल विषाक्त होने के कारण उसमें रहने वाली मछलियाँ एवं अन्य जलीय जीव तड़प-तड़प कर मर रहे हैं। बढ़ते ध्वनि प्रदूषण से कानों के परदों पर लगातार घातक प्रभाव डाला है। निरंतर घातक रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग भूमि को जहरीला बनाता जा रहा है। पृथ्वी पर अम्लीय वर्षा का प्रकोप धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है जिससे, पृथ्वी का अस्तित्व संकटग्रस्त होता गया है।

पर्यावरण हमारे चारों ओर का वह समग्र वातावरण है, जिसमें जल, वायु, पेड़-पौधे, मिट्टी, प्रकृति के अन्य तत्व व जीव-जंतु शामिल हैं। जब पर्यावरण घटक आपस में ताल-मेल नहीं रखते तो पारिस्थितिकी असंतुलन का खतरा उत्पन्न होता है। पर्यावरण के सभी तत्व प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मानव विकास को प्रभावित करते हैं। मानव, विकास और पर्यावरण किसी भी सभ्यता के प्रमुख अंग हैं। इनके पारस्परिक सम्बन्ध को ही पारिस्थितिकी संतुलन कहा जाता है। एक-दूसरे के क्षेत्र में अतिक्रमण से पर्यावरणिक प्रदूषण व पारिस्थितिकी असंतुलन का संकट उत्पन्न होता है।

पर्यावरण प्रदूषण के कारण वातावरण के भौतिक, रासायनिक, जैविक स्थिति में ऐसे परिवर्तन हो रहे हैं। जिनसे मनुष्य, जानवर और वनस्पति को नुकसान पहुँच रहा है, साथ ही हमारी राष्ट्रीय धरोहर जैसे- ताजमहल को अम्लीय वर्षा के द्वारा क्षति पहुँची है। पर्यावरण प्रदूषण का कारण मनुष्य की बढ़ती इच्छाएँ व आराम और शीघ्रता की चाह है। मनुष्य खुद प्रकृति का नियंता बनना चाहता है, जो कि किसी भी प्रकार से संभव नहीं है। मानव के नियंता बनने की चाह व पर्यावरणीय संसाधनों के अतिदोहन ने आज समस्त संसार के समक्ष प्राकृतिक संसाधनों के समाप्तप्राय होने का संकट खड़ा कर दिया है।

पर्यावरण इस समय का ज्वलंत और चिंतनशील विषय है। विज्ञान द्वारा नई-नई खोजों के जरिए मनुष्य लगातार नई ऊंचाईयां तय कर रहा है, उसी अनुपात में उसकी प्रकृति के साथ भी अपेक्षित मुठभेड़ जारी है, जिसकी उपलब्धियों पर वह अपने आप को सफल भी मान रहा है। इस छद्म सफलता के नशे में मनुष्य को यह भान नहीं हो रहा कि उसकी यह उपलब्धियां वेश बदलकर विभीषिका और त्रासदी के रूप में जाने कब उसके सामने आ जाएंगी। लेकिन मनुष्य का यह 'अनजानापन' उसकी आने वाली पीढ़ियों को प्रकृति के विनाश के दुष्परिणामों से बचा नहीं सकता, क्योंकि बक़ौल मार्क्स "प्रकृति कभी अकेले किसी एक व्यक्ति का नहीं बल्कि आर्थिक उत्पादन में मिलकर काम करने वाले मनुष्यों के संगठन का सामना करती है। इसी तरह व्यक्ति भी प्रकृति का सामना नहीं करता बल्कि समाज द्वारा संगठित रूप में उसका सामना करना पड़ता है"। इसलिए इसमें कोई दो राय नहीं कि मनुष्य और प्रकृति के बीच गहराता पर्यावरणीय संकट एक चिंतनीय विषय के रूप में समूचे विश्व के सामने आ खड़ा हुआ है। इस पर गहनता से विचार करना आज के समय की आवश्यकता है। कवि केदारनाथ सिंह इसी संकट की ओर मानव समाज का ध्यान आकर्षित कराना चाहते हैं।

केदारनाथ सिंह का प्रथमत: परिचय गांव से हुआ, तत्पश्चात बनारस व अन्य शहरों से। केदारनाथ सिंह के काव्य में हम ग्रामीण चेतना और संवेदनशीलता को प्रमुख रुप में देख सकते हैं। गांव का व्यक्ति प्रकृति के अधिक करीब होता है, हर ऋतु का प्रत्यक्ष रुप से अनुभव करता है, प्रकृति के परिवर्तन के साथ उसका सुख-दुख जुड़ा

होता है। आज समय बहुत जल्दी से बदल रहा है, विकास और उत्थान के नाम पर हम प्रकृति का 'अंधा-धुंध' दोहन कर रहे हैं, जो कि चिंता का विषय है। 'ग्लोबल वार्मिंग' से जिस तरह बर्फ पिघल रही है, समुद्र के पानी का स्तर नीचे जा रहा है, विकास की हवा ने सारी पृथ्वी की हवा दूषित कर दी है। यह चिंतनीय विषय है अगर इस पर आज नहीं सोचा गया तो मनुष्य की आने वाली पीढ़ियों का जीवन पृथ्वी पर दुर्लभ हो जाएगा। जिस समय तमाम वाद, बाजारीकरण, उदारीकरण, वैश्वीकरण इत्यादि अपनी प्रभुसत्ता कायम कर रहे थे। उपभोक्तावादी संस्कृति पनप रही थी। ओद्योगिक क्रांति से पर्यावरण पर संकट खड़ा हो रहा था। मशीनी युग में लोभ-लालच की प्रवृति पनप रही थी। वहाँ केदार जल प्रदूषण की समस्या उठाते हुए लिखते हैं-

"यहाँ पृथ्वी पर मैं
यानी आपका मुहँलगा यह पानी
अब दुर्लभ होने के कगार तक
पहुँच चुका है"

(पानी की प्रार्थना)

मनुष्य अपने क्रिया-कलापों द्वारा भूमि प्रदूषण में नियमित योगदान देता रहता है। मनुष्य जाने-अनजाने अपने आस-पास की चीजों को प्रभावित करता है। भूमि से अधिक उत्पादन की लालसा ने पृथ्वी को दूषित कर दिया है। पृथ्वी पर अब जीवन संभव-सा प्रतीत नहीं होता। कवि केदारनाथ 'पृथ्वी रहेगी' कविता के माध्यम से आशा की ज्योति जलाते हैं, और कहते हैं-

"मुझे विश्वास है
यह पृथ्वी रहेगी
यदि और कहीं नहीं तो मेरी हड्डियों में
यह रहेगी जैसे पेड़ के तने में
रहती हैं दीमकें"।
-(पृथ्वी रहेगी)

भारत में आज भी अधिकांश शहर नदियों के किनारे बसे हुए हैं। किसी ज़माने में दिल्ली का 'लालकिला' भी यमुना नदी के किनारे था, वर्तमान में यमुना के मार्ग में बदलाव कर दिया गया है। कवि केदार इस ओर अपना ध्यान इंगित करते हुए कहते हैं-

"नदियाँ जो कि असल में
शहरों का आरंभ हैं
और शहर जो कि असल में
नदियों का अंत"।

(नदियाँ)

मनुष्य की यह प्रवृति है, वो जिस जगह सबसे पहले पहुँचता है, वहाँ से अपने अनुकूल चीजों का चयन कर बाकी को क्षति ग्रस्त कर देता है। नदियां जिनके सहारे सभ्यता का विकास हुआ, असल में शहर ही उनका अंत कर देने पर आमादा हैं।

आज के समय में उपभोक्तावाद और बाज़ारवाद अपने चरम पर है। ऐसे कठिन समय में कवि केदार कविता के माध्यम से प्रकृति की ओर लोटते हैं। केदार किसान और उसके बेटे के बीच हुए संवाद के माध्यम से भारतीय संस्कृति में व्याप्त प्रकृति के आदर भाव को प्रकट करते हैं-

"मेरे बेटे
हरा पत्ता
कभी मत तोड़ना
और अगर तोड़ना तो ऐसे
कि पेड़ को जरा भी
न हो पीड़ा"

अकाल में सारस

भारतीय संस्कृति में पेड़-पौधों में भी चेतना मानी जाती है। जिसके अन्दर एक जीव निवास करता है। मनुष्य ने अपनी भौतिक सुविधा और आरामदाह, भोग-विलास की वस्तुएं एकत्रित करने के लिए प्रकृति का असीमित दोहन किया है। प्रकृति का हर एक अंग इस विद्रोह को कायम करता है-

"उधर कुर्सी और मेज़ का
एक संयुक्त मोर्चा था
दोनों तड़पकर बोले-
जी-अब बहुत हो चुका
आपको सहते-सहते
हमें बेतरह याद आ रहे हैं हमारे पेड़
और उनके भीतर का वह ज़िन्दा द्रव
जिसकी हत्या कर दी है आपने"

(विद्रोह)

मनुष्य ने किस प्रकार अपने लिए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया है। असंवेदनशीलता के साथ प्रकृति का दोहन किया है, इससे परेशान हो पेड़ चीत्कार कर उठे हैं। कवि ने जिस प्रकार शब्दों को पाठक के समक्ष पूरी ताकत से फेंका है, उससे समझ आता है कि कवि पर्यावरण के प्रति कितना सचेत है। जिसे हम प्रगति कह रहें हैं, वो विनाश है। केदारनाथ सिंह अपनी कविता के माध्यम से इसका प्रतिरोध करते हैं।

मनुष्य की व्यावसायिक बुद्धि और मुनाफ़ा कमाने की लालसा ने प्राकृतिक संसाधनों का अति दोहन किया है, जिससे प्राकृतिक संसाधन शीघ्र ही समाप्ति की कगार पर पहुँच जाएँगे। मनुष्य का विकास का जो पहिया चल रहा है, वो अचानक ही एक दिन रुक जाएगा, जब इन संसाधनों की समाप्ति हो जायेगी। हम आज यह समझ नही रहे हैं क्योंकि हमें पर्याप्त मात्रा में सहज ही सब उपलब्ध हो जाता है, पर हमें नही ज्ञात कि हम अपने हिस्से के संसाधनों का उपयोग तो कर ही चुके हैं, बल्कि आने वाली पीढ़ी के उपयोग की वस्तुएं भी समाप्त करते जा रहे हैं। अगर यही दौर चलता रहा तो वो दिन दूर नहीं जब पृथ्वी से मनुष्य का अस्तित्व ही मिट जाएगा। मनुष्य को जीने के लिए हवा, पानी और खाद्य पदार्थों की अति-आवश्यकता होती है और इनकी प्राप्ति शुद्ध पर्यावरण और संतुलित पारिस्थितिकी के बावजूद ही हो सकती है। हमने अपने क्रिया-कलापों द्वारा वायु को बुरी तरह से प्रदूषित कर दिया है, जिसमें साँस लेना दूभर हो गया है। बच्चे और बुजर्गों को नित ही स्वसन सम्बन्धी परेशानियाँ हो रही हैं, जिससे उनका स्वास्थ्य खराब हो रहा है। जल संसाधन की मात्रा में भारी कमी आयी है, इसे विदर्भ क्षेत्र के वासी भली-भांति समझ सकते हैं। जो पानी की मात्रा बची हुयी है, हमने उसे भी प्रदूषित कर दिया है। भिन्न-भिन्न प्रकार के रासायनिकों का उपयोग करके हमने मृदा प्रदूषण को भी एक बड़ी वजह बना दिया है, जिससे आज हमारे खाद्य पदार्थ भी प्रभावित हो चुके हैं। सार यह है कि मनुष्य ने अपने विकास की गति से काल की गति तक की यात्रा बड़ी तेजी से पूरी की है। जिन पदार्थों की जरूरत उसे सामान्य दिनचर्या में पड़ती है, वे आज या तो प्रदूषित हो चुके है या अपनी समाप्ति के कारण मनुष्य की पहुँच से बाहर होते जा रहे हैं। मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधाओं की पूर्ति हेतु प्रकृति पर अधिकार ज़माने की कोशिश की है, उसके भयंकर परिणाम बताते हुए फ्रेडरिक एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'डायलेक्टिक्स ऑफ़ नेचर' में लिखा है- "हमको इस बात से संतुष्ट नहीं होना चाहिए कि मनुष्य प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार की प्रत्येक विजय के लिए प्रकृति हमसे बदला लेती है।"

पर्यावरण पर 21वीं सदी में पर्याप्त चिंतन होने लगा है, आज यह विषय हमारे लिए अपने स्वरुप, क्षेत्र एवं मानव जीवन पर प्रभाव के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है। कवि केदारनाथ सिंह अपनी कविताओं के माध्यम से निरंतर ही पर्यावरणीय चिंता को प्रकट करते रहे हैं और उसके प्रभाव को परिलक्षित करते रहें हैं। सृष्टि पर पहरा

में संकलित कविता 'पानी की प्रार्थना' बाज़ारवाद पर कटाक्ष करती है, बाज़ार में किसी रहस्यमय स्रोत से पानी के पहुँचने पर पूंजीपति और सत्ता के गठजोड़ का खुलासा करते हैं। पानी की समस्या की ओर ध्यान दिलाते हुए लिखते हैं-"पर यहाँ पृथ्वी पर मैं/यानि आपका मुहलगा पानी/अब दुर्लभ होने के कगार तक/पहुँच चुका हूँ/पर चिंता की कोई बात नहीं/यह बाज़ारों का समय है/और वहाँ किसी रहस्यमय स्रोत से मैं हमेशा मौजूद हूँ"। जिस तरह से पानी को बाज़ार की वस्तु बना दिया गया है, उससे प्रतीत होता है कि ऐसा करने के लिए ही तो कहीं प्राकृतिक जल स्रोतों को खत्म न किया जा रहा हो। केदारनाथ सिंह बिम्बों के कवि हैं, वे बिम्बों के माध्यम से पूरी कहानी को चित्रित कर देते हैं- "भयानक सूखा है/ पक्षी छोड़कर चले गये हैं/ पेड़ों को/ बिलों को छोड़कर चले गये चीटे-चीटियाँ" बिम्ब के माध्यम से पर्यावरणीय संकट को उपस्थित किया गया है। इस सूखे से मानव जीवन पर व्याप्त संकट का चित्रण किया गया है।

'बाघ' नामक कविता पर्यावरणीय आख्यान है। कवि का अपना समय कविता के माध्यम से झाकने लगता है। कवि अपने वर्तमान को बाघ जैसे संश्लिष्ट चित्र में प्रस्तुत करता है। बाघ जंगल में न रह कर अखबार में अपनी जगह बनाता है, खिलोने के रूप में शेष रह जाना उसके अस्तित्व पर संकट खड़ा करता है। संसार में कितने प्राणी लुप्त हो कर आज कथा के विषय हो गये हैं। इस अनियंत्रित, अनिमियत विकास से कहीं मानव भी कथाओं में न आने लगे। जिस तरह से जंगलो को काटा जा रहा है, उससे लगता है शीघ्र ही जंगली जीवों के लिए स्थान नहीं बचेगा। केदारनाथ सिंह ने पर्यावरणीय संकट का एक कारण मशीनीकरण को भी माना है। "एक सुन्दर और विशाल ट्रैक्टर/ वहाँ खेत में खड़ा था" औद्योगिकीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद के कारण पर्यावरण ह्रास में तेजी आई है।

भारतीय संस्कृति के परिचायिक ग्रन्थ ऋग्वेद, यजुर्ववेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद इत्यादि में पर्यावरण के महत्व और संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। अपने 'आवरण' (पर्यावरण) पर जिस संस्कृति में ध्यान नहीं दिया जाएगा, उसका अंत निश्चित होगा और निकट होगा। आज के उपभोक्तावादी समय, व्यावसायिक बुद्धि के तंत्रजाल में हम पर्यावरण के महत्व को भूल रहे हैं। इसे याद दिलाने में हमारे कवि, लेखक, साहित्यकार समय-समय पर प्रयत्न करते रहते हैं। ऐसा ही एक प्रयत्न कवि केदारनाथ सिंह के द्वारा उनके काव्य के माध्यम से किया गया है।

सन्दर्भ सूची

1. कुमार, रज्जन (2012), पर्यावरणीय नैतिक संचेतना एक वैज्ञानिक अनुशीलन, लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान
2. पंवार, किशोर (2015), पर्यावरण एक समग्र दृष्टिकोण, दिल्ली: शिल्पायन पब्लिशर्स
3. मिश्र, ज्योतिमा (2017), प्रगतिशील कवि केदारनाथ सिंह, दिल्ली: सूर्य भारती प्रकाशन
4. यायावर, भारत (संपा), (2007), कवि केदारनाथ सिंह, दिल्ली: वाणी प्रकाशन
5. व्यास, हरिचन्द्र (2011), पर्यावरण शिक्षा, दिल्ली: विद्या विहार
6. शर्मा, श्री राम,(2002 पंचम आवृति), अथर्ववेद संहिता, हरिद्वार:ब्रह्मवर्चस
7. शर्मा, श्री राम, (1994 द्वितीय आवृति), यजुर्वेद संहिता, हरिद्वार:ब्रह्मवर्चस
8. सं. सिंह, कामेश्वर प्रसाद,(2016), केदारनाथ सिंह चकिया से दिल्ली, दिल्ली: वाणी प्रकाशन
9. सिंह, केदारनाथ (1985), प्रतिनिधि कवितायेँ, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
10. सिंह, केदारनाथ (2014), सृष्टि पर पहरा, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
11. हबीब, इरफ़ान, (2018), मनुष्य और पर्यावरण, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
12. श्रीवास्तव, गोपीनाथ, (2001), पर्यावरण प्रदूषण, दिल्ली: सुनील साहित्य सदन

13ण त्रिपाठी, उपेन्द्र कुमार,(2008), यजुर्वेद में पर्यावरण, चौखम्भा संस्कृत भवन